CHAPTER चालीस

अक्रूर द्वारा स्तुति

इस अध्याय में अक्रूर द्वारा भगवान् की स्तुति की गई है। अक्रूर ने प्रार्थना की, ''इस दृश्य जगत का सृजन करने वाले ब्रह्मा की उत्पत्ति भगवान् की कमल-नाभि से हुई। भौतिक प्रकृति के पाँचों तत्त्व, पाँचों सम्बन्धित इन्द्रिय विषय, दस इन्द्रियाँ, अहंकार, सम्पूर्ण प्रकृति, इत्यादि सृष्टा तथा सारे देवता उनके शरीर के अंगों से उद्भूत होते हैं। उन्हें इन्द्रिय-ज्ञान से नहीं जाना जा सकता अत: ब्रह्मा तथा अन्य देवता तक उनके असली स्वरूप से अनजान रहते हैं।''

विभिन्न श्रेणियों के लोग भगवान् की पूजा भिन्न-भिन्न प्रकारों से करते हैं। सकाम कर्मी वैदिक यज्ञों द्वारा उनकी पूजा करते हैं, दार्शनिक भौतिक कर्म का परित्याग करके और आध्यात्मिक ज्ञान का अनुसरण करके, योगीजन ध्यान द्वारा, शैवगण शिवजी की पूजा करके, वैष्णवजन पञ्चरात्र जैसे शास्त्रों के आदेशों का पालन करते हुए तथा अन्य सन्त-महात्मा उनकी पूजा आत्मा के रूप में, भौतिक पदार्थ के रूप में तथा अधिष्ठाता देवताओं के रूप में करते हैं। जिस प्रकार नदियाँ विभिन्न दिशाओं से बहकर समुद्र में आ मिलती हैं उसी तरह इन विविध सत्ताओं को अपने को समर्पित करने वालों की पूजा का परम लक्ष्य भगवान् विष्णु में ही मिलता है।''

''सम्पूर्ण विश्व का रूप—विराट रूप—भगवान् विष्णु का ही रूप माना जाता है। जिस प्रकार जलचर जल में विचरते हैं या जिस तरह उदुम्बर फल के भीतर छोटे छोटे कीड़े चलते हैं उसी तरह सारे जीव भगवान् के भीतर इधर उधर घूमते रहते हैं। ये सारे जीव उनकी माया के वशीभूत होकर अपने को असत्य में शरीर, घर आदि मानकर भौतिक कर्म के पथ पर घूमते रहते हैं। भ्रमवश मूर्ख व्यक्ति घास और पत्तियों से ढके जल के आगार की उपेक्षा करके मृगतृष्णा के पीछे दौड़ता फिरता है। इसी तरह अविद्या के पाश में पड़े हुए जीव भगवान् विष्णु को छोड़कर अपने शरीरों एवं घरों आदि के प्रति अनुरक्त रहते हैं। अपनी इन्द्रियों के ऐसे आज्ञाकारी दास कभी भी भगवान् के चरणकमलों की शरण प्राप्त नहीं कर पाते। एकमात्र उनकी कृपा से यदि उन्हें किसी सन्त-भक्त की संगति प्राप्त हो जाती है, तो यह भव-पाश कट जाता है। तभी वे लोग भगवान् के शुद्ध भक्तों की सेवा करके कृष्णभावनामृत उत्पन्न कर सकते हैं।''

श्रीअक्रूर उवाच

नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं

नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् ।
यन्नाभिजातादरविन्दकोषाद्
ब्रह्माविरासीद्यत एष लोकः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-अक्रूरः उवाच—श्री अक्रूर ने कहा; नतः—विनत; अस्मि—हूँ; अहम्—मैं; त्वा—आपके प्रति; अखिल—समस्त; हेतु—कारणों के; हेतुम्—कारण; नारायणम्—नारायण को; पूरुषम्—परम पुरुष; आद्यम्—आदि; अव्ययम्—अव्यय; यत्—जिससे; नाभि—नाभि; जातात्—से उत्पन्न; अरविन्द—कमल के; कोषात्—कोष से; ब्रह्मा—ब्रह्मा; अविरासीत्—प्रकट हुआ; यतः—जिससे; एषः—यह; लोकः—जगत।

श्री अक्रूर ने कहा : हे समस्त कारणों के कारण, आदि तथा अव्यय महापुरुष नारायण, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपकी नाभि से उत्पन्न कमल के कोष से ब्रह्मा प्रकट हुए हैं और उनसे यह ब्रह्माण्ड अस्तित्व में आया है।

भूस्तोयमग्निः पवनं खमादि-
र्महानजादिर्मन इन्द्रियाणि ।
सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे
ये हेतवस्ते जगतोऽङ्गभूताः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

भूः—पृथ्वी; तोयम्—जल; अग्निः—अग्नि; पवनम्—वायु; खम्—आकाश; आदिः—तथा इसका उद्गम, मिथ्या अहंकार; महान्—महत-तत्त्व; अजा—सम्पूर्ण भौतिक प्रकृति; आदिः—उसका उद्गम, परमेश्वर; मनः—मन; इन्द्रियाणि—इन्द्रियाँ; सर्व-इन्द्रिय—सारी इन्द्रियों के; अर्थाः—विषय, वस्तुएँ; विबुधाः—देवतागण; च—तथा; सर्वे—सभी; ये—जो; हेतवः—कारण; ते—तुम्हारा; जगतः—जगत के; अङ्ग—शरीर से; भूताः—उत्पन्न।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश एवं इसका स्त्रोत तथा मिथ्या अहंकार, महत्-तत्त्व, समस्त भौतिक प्रकृति और उसका उद्गम तथा भगवान् का पुरुष अंश, मन, इन्द्रियाँ, इन्द्रिय विषय तथा इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता—ये सब विराट जगत के कारण आपके दिव्य शरीर से उत्पन्न हैं।

नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते
ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीतः ।
अजोऽनुबद्धः स गुणैरजाया
गुणात्परं वेद न ते स्वरूपम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एते—ये (सृष्टि के तत्त्व); स्वरूपम्—असली पहचान; विदुः—जानते हैं; आत्मनः—परमात्मा का; ते—तुम; हि—निस्सन्देह; अजा-आदयः—पूर्ण प्रकृति इत्यादि; अनात्मतया—निर्जीव पदार्थ होने से; गृहीताः—पकड़े हुए, बद्ध; अजः—ब्रह्मा; अनुबद्धः—बँधा हुआ; सः—वह; गुणैः—गुणों से; अजायाः—प्रकृति के; गुणात्—इन गुणों से; परम्—दिव्य; वेद न—नहीं जानता; ते—आपके; स्वरूपम्—असली रूप को।

सम्पूर्ण भौतिक प्रकृति तथा ये अन्य सृजन-तत्त्व निश्चय ही आपको यथा-रूप में नहीं जान सकते क्योंकि ये निर्जीव पदार्थ के परिमण्डल में प्रकट होते हैं। चूँकि आप प्रकृति के गुणों से परे हैं, अतः इन गुणों से बद्ध ब्रह्माजी भी आपके असली रूप को नहीं जान पाते।

तात्पर्य : ईश्वर भौतिक प्रकृति से परे हैं। जब तक हम भी सीमित सांसारिक चेतना को लाँघ नहीं जाते तब तक उन्हें जान नहीं सकते। यहाँ तक कि ब्रह्माण्ड के सबसे बड़े जीव ब्रह्मा भी परमेश्वर को तब तक समझ नहीं सकते जब तक वे शुद्ध कृष्णभावनामृत के पद को प्राप्त नहीं हो लेते।

त्वां योगिनो यजन्त्यद्धा महापुरुषमीश्वरम् ।
साध्यात्मं साधिभूतं च साधिदैवं च साधवः ॥ ४॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम्हारे लिए; योगिनः—योगीजन; यजन्ति—यज्ञ करते हैं; अद्धा—निश्चय ही; महा-पुरुषम्—परम पुरुष के लिए; ईश्वरम्—ईश्वर के लिए; स-अध्यात्मम्—जीवों (का साक्षी); स-अधिभुतम्—भौतिक तत्त्वों का; च—तथा; स-अधिदैवम्—नियंत्रक देवताओं का; च—तथा; साधवः—शुद्ध पुरुष।

शुद्ध योगीजन आप की अर्थात् परमेश्वर की तीन रूपों में अनुभूति करते हुए पूजा करते हैं। ये तीन हैं—जीव, भौतिक तत्त्व जिनसे जीवों के शरीर बने हैं तथा इन तत्त्वों के नियंत्रक देवता (अधिदेव)।

त्रय्या च विद्यया केचित्त्वां वै वैतानिका द्विजाः ।
यजन्ते विततैर्यज्ञैर्नानारूपामराख्यया ॥ ५॥

शब्दार्थ

त्रय्या—तीन वेदों के; च—तथा; विद्यया—मंत्रों से; केचित्—कुछ; त्वाम्—तुमको; वै—निस्सन्देह; वैतानिकाः—तीनों अग्नियों के विधानों का समादर करने वाले; द्विजाः—ब्राह्मण; यजन्ते—पूजा करते हैं; विततैः—विस्तृत; यज्ञैः—यज्ञों के द्वारा; नाना—विविध; रूप—रूप वाले; अमर—देवताओं की; आख्यया—उपाधियों से।

तीन पवित्र अग्नियों से सम्बद्ध नियमों का पालन करने वाले ब्राह्मण तीनों वेदों से मंत्रोचार करके तथा अनेक रूपों और नामों वाले विविध देवताओं के लिए व्यापक अग्नि यज्ञ करके पूजा करते हैं।

तात्पर्य : अब अक्रूर यह बतलाते हैं कि जो सांख्य, योग तथा तीनों वेदों के मार्गों का पालन करते हैं वे भगवान् की पूजा विविध प्रकारों से करते हैं। जहाँ इन्द्र, वरुण तथा अन्य देवताओं की पूजा किये जाने की वेदों द्वारा संस्तुति की जाती है, वहीं वे इन देवताओं को सर्वोच्च भी बतलाते हैं। किन्तु उसी

के साथ वेदों का कहना है कि एक परम नियन्ता परब्रह्म ही है। वह भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जो भौतिक सृजन द्वारा विविध देवताओं के रूप में अपनी शक्ति का विस्तार करते हैं। इस तरह देवताओं की पूजा *कर्मकाण्ड* की अप्रत्यक्ष विधि से या सकाम धार्मिक अनुष्ठानों द्वारा उन तक पहुँचती है। किन्तु अन्ततोगत्वा नित्य सिद्धि चाहने वाले को पूर्ण कृष्णभावनामृत में रहकर प्रत्यक्षत: भगवान् की पूजा करनी चाहिए।

एके त्वाखिलकर्माणि सन्न्यस्योपशमं गता: ।
ज्ञानिनो ज्ञानयज्ञेन यजन्ति ज्ञानविग्रहम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

एके—कुछ लोग; त्वा—तुमको; अखिल—समस्त; कर्माणि—कार्य; सन्न्यस्य—त्यागकर; उपशमम्—शान्ति; गता:—प्राप्त करके; ज्ञानिन:—ज्ञानीजन; ज्ञान-यज्ञेन—ज्ञान-अनुशील के यज्ञ द्वारा; यजन्ति—पूजा करते हैं; ज्ञान-विग्रहम्—साक्षात् ज्ञान को।

आध्यात्मिक ज्ञान की खोज में कुछ लोग सारे भौतिक कार्यों का परित्याग कर देते हैं और इस तरह शान्त होकर समस्त ज्ञान के आदि रूप आपकी पूजा करने के लिए ज्ञान-यज्ञ करते हैं।

तात्पर्य : आधुनिक दार्शनिकजन भगवान् की पूजा की परवाह किये बिना ही ज्ञान का अनुसरण करते हैं फलत: स्वाभाविक है कि उन्हें बहुत ही कम लाभ हो पाता है।

अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाभिहितेन ते ।
यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

अन्ये—अन्य लोग; च—तथा; संस्कृत—शुद्ध किये हुए; आत्मान:—जिनकी बुद्धि; विधिना—(पञ्चरात्र जैसे शास्त्रों के) आदेशों से; अभिहितेन—प्रस्तुत किये गये; ते—तुम्हारे द्वारा; यजन्ति—पूजा करते हैं; त्वत्-मया:—तुम्हारे विचार से पूरित; त्वाम्—तुमको; वै—निस्सन्देह; बहु-मूर्ति—अनेक रूपों वाले; एक-मूर्तिकम्—एक स्वरूप वाला।

और अन्य लोग जिनकी बुद्धि शुद्ध है वे आपके द्वारा लागू किये गये वैष्णव शास्त्रों के आदेशों का पालन करते हैं। वे आपके चिन्तन में अपने मन को लीन करके आपकी पूजा परमेश्वर रूप में करते हैं, जो अनेक रूपों में प्रकट होता है।

तात्पर्य : यहाँ *संस्कृतात्मान:* (वे जिनकी बुद्धि शुद्ध है) शब्द सार्थक है। इसका अर्थ यह हुआ कि इसके पूर्व जिन पूजकों का उल्लेख हुआ है उनकी बुद्धि भौतिक कल्मष से शुद्ध नहीं हुई है, अत: वे भगवान् की अप्रत्यक्ष पूजा करते हैं। किन्तु जो शुद्ध हैं, वे भगवान् की प्रत्यक्ष पूजा या तो भगवान्

कृष्ण के रूप में या उनके विविध स्वांश रूपों यथा वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न या अनिरुद्ध के रूप में करते हैं जैसाकि यहाँ इंगित किया गया है।

त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम् ।
बह्वाचार्यविभेदेन भगवन्तर्नुपासते ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

त्वाम्—तुम; एव—भी; अन्ये—अन्य; शिव—शिव द्वारा; उक्तेन—कहे गये; मार्गेण—मार्ग से; शिव-रूपिणम्—शिव के रूप में; बहु-आचार्य—अनेक शिक्षकों के; विभेदेन—विभिन्न भेदों से; भगवन्तम्—भगवान् को; उपासते—पूजा करते हैं।

कुछ अन्य लोग भी हैं, जो आपकी पूजा भगवान् शिव के रूप में करते हैं। वे उनके द्वारा बताये गये तथा अनेक उपदेशकों द्वारा नाना प्रकार से व्याख्यायित मार्ग का अनुसरण करते हैं।

तात्पर्य : *त्वाम् एव* शब्द (''तुम भी'') सूचित करते हैं कि शिवजी के पूजन का मार्ग अप्रत्यक्ष है अतएव निकृष्ट है। अक्रूर कृष्ण या विष्णु की प्रत्यक्ष पूजा अपनी स्तुति द्वारा करने के कारण श्रेष्ठ विधि का पालन कर रहे हैं।

सर्व एव यजन्ति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम् ।
येऽप्यन्यदेवताभक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

सर्वे—सभी; एव—निस्सन्देह; यजन्ति—पूजा करते हैं; त्वम्—तुम्हारी; सर्व-देव—समस्त देवता; मय—हे वही आप, जो युक्त हो; ईश्वरम्—भगवान्; ये—वे; अपि—भी; अन्य—दूसरे; देवता—देवताओं का; भक्ताः—भक्तों; यदि अपि—यद्यपि; अन्य—अन्यत्र मुड़े; धियः—ध्यान; प्रभो—हे प्रभो।

किन्तु हे प्रभु, ये सारे लोग, यहाँ तक कि जिन्होंने आपसे अपना ध्यान मोड़ रखा है और जो अन्य देवताओं की पूजा कर रहे हैं, वे वास्तव में, हे समस्त देवमय, आपकी ही पूजा कर रहे हैं।

तात्पर्य : यहाँ भाव यह है कि जो देवताओं को पूजते हैं, वे भी अप्रत्यक्ष रूप से भगवान् विष्णु की ही पूजा करते हैं। लेकिन ऐसे पूजकों का ज्ञान अधूरा है।

यथाद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो ।
विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्त्वां गतयोऽन्ततः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; अद्रि—पर्वतों से; प्रभवाः—उत्पन्न; नद्यः—नदियाँ; पर्जन्य—वर्षा से; आपूरिताः—पूरित; प्रभो—हे प्रभु; विशन्ति—प्रवेश करती हैं; सर्वतः—सभी दिशाओं से; सिन्धुम्—समुद्र में; तद्वत्—उसी तरह; त्वाम्—तुम में; गतयः—मार्ग; अन्ततः—अन्त में।

हे प्रभो, जिस प्रकार पर्वतों से उत्पन्न तथा वर्षा से पूरित नदियाँ सभी ओर से समुद्र में आकर मिलती हैं उसी तरह ये सारे मार्ग अन्त में आप तक पहुँचते हैं।

तात्पर्य : स्वयं भगवान् कृष्ण इस पूजा प्रकरण को *भगवद्गीता* (९.२३-२५) में इस प्रकार बतलाते हैं—

येऽप्य अन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विता:।

तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।

न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते॥

यान्ति देवव्रता देवान् पित्नन् यान्ति पितृव्रता:।

भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥

"हे कुन्तीपुत्र! जो लोग अन्य देवताओं के भक्त हैं और उनकी श्रद्धापूर्वक पूजा करते हैं वास्तव में वे भी मेरी ही पूजा करते हैं किन्तु वे ऐसा गलत ढंग से करते हैं। मैं ही समस्त यज्ञों का एकमात्र भोक्ता तथा स्वामी हूँ। अत: जो लोग मेरी वास्तविक दिव्य प्रकृति को नहीं पहचान पाते उनका पतन हो जाता है। जो देवताओं की पूजा करते हैं, वे देवताओं के बीच जन्म लेंगे। जो पितरों की पूजा करते हैं, वे पितरों के पास जाते हैं। जो भूतप्रेतों की उपासना करते हैं, वे उन्हीं के बीच जन्म लेंगे और जो मेरी पूजा करते हैं, वे मेरे साथ निवास करेंगे।

सत्त्वं रजस्तम इति भवत: प्रकृतेर्गुणा: ।
तेषु हि प्राकृता: प्रोता आब्रह्मस्थावरादय: ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सत्त्वम्—सत्, अच्छाई; रज:—काम, रज; तम:—तम, अज्ञान; इति—इस प्रकार विख्यात; भवत:—आपकी; प्रकृते:—प्रकृति के; गुणा:—गुण; तेषु—उनमें; हि—निस्सन्देह; प्राकृता:—बद्धजीव; प्रोता:—बिने हुए, उलझे; आ-ब्रह्म—ब्रह्मा तक; स्थावर-आदय:—अचर प्राणी इत्यादि।

आपकी भौतिक प्रकृति के सतो, रजो तथा तमो गुण ब्रह्मा से लेकर अचर प्राणियों तक के समस्त बद्धजीवों को पाशबद्ध किये रहते हैं।

तुभ्यं नमस्ते त्वविषक्तदृष्टये

सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे ।
गुणप्रवाहोऽयमविद्यया कृतः
प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मसु ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

तुभ्यम्—तुम्हें; नमः—नमस्कार; ते—तुम्हारा; तु—तथा; अविषक्त—पृथक्, विलग; दृष्टये—दृष्टि वाले; सर्व-आत्मने—सबों की आत्मा को; सर्व—हरएक की; धियाम्—चेतना के; च—तथा; साक्षिणे—साक्षी को; गुण—गुणों की; प्रवाहः—धारा; अयम्—यह; अविद्यया—अज्ञान के कारण; कृतः—उत्पन्न; प्रवर्तते—चलता रहता है; देव—देवताओं के रूप में; नृ—मनुष्य; तिर्यक्—तथा पशु; आत्मसु—उनमें जिनका स्वरुप है।

मैं आपको नमस्कार करता हूँ, जो समस्त जीवों के परमात्मा रूप होकर निष्पक्ष दृष्टि से हर एक की चेतना के साक्षी हैं। अज्ञान से उत्पन्न आपके भौतिक गुणों का प्रवाह उन जीवों के बीच प्रबलता के साथ प्रवाहित होता है, जो देवताओं, मनुष्यों तथा पशुओं का रूप धारण करते हैं।

अग्निर्मुखं तेऽवनिरङ्घ्रिरीक्षणं
सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः ।
द्यौः कं सुरेन्द्रास्तव बाहवोऽर्णवाः
कुक्षिर्मरुत्प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥ १३ ॥
रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा
मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः ।
निमेषणं रात्र्यहनी प्रजापति-
र्मेढ्रस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

अग्निः—अग्नि; मुखम्—मुख; ते—तुम्हारा; अवनिः—पृथ्वी; अङ्घ्रिः—पाँव; इक्षणम्—आँखें; सूर्यः—सूर्य; नभः—आकाश; नाभिः—नाभि; अथ उ—तथा भी; दिशः—दिशाएँ; श्रुतिः—श्रवणेन्द्रिय; द्यौः—स्वर्ग; कम्—सिर; सुर-इन्द्राः—प्रमुख देवता; तव—तुम्हारी; बाहवः—बाँहें; अर्णवाः—समुद्र; कुक्षिः—उदर; मरुत्—वायु; प्राण—प्राण-वायु; बलम्—तथा शारीरिक बल; प्रकल्पितम्—कल्पना किया हुआ; रोमाणि—शरीर के रोएँ; वृक्ष—पेड़; ओषधयः—जड़ी-बूटियाँ; शिरः-रुहाः—सिर के ऊपर के बाल; मेघाः—बादल; परस्य—परमेश्वर की; अस्थि—हड्डियाँ; नखानि—तथा नाखून; ते—तुम्हारा; अद्रयः—पर्वत; निमेषणम्—पलक झाँपना; रात्रि-अहनी—दिन तथा रात; प्रजापतिः—मनुष्य को जन्म देने वाला; मेढ्रः—गुप्तांग, जननेन्द्रिय; तु—तथा; वृष्टिः—वर्षा; तव—तुम्हारा; वीर्यम्—वीर्य; इष्यते—माना जाता है।

अग्नि आपका मुख कही जाती है, पृथ्वी आपके पाँव हैं, सूर्य आपकी आँख है और आकाश आपकी नाभि है। दिशाएँ आपकी श्रवणेन्द्रिय हैं, प्रमुख देवता आपकी बाँहें हैं और समुद्र आपका उदर है। स्वर्ग आपका सिर समझा जाता है और वायु आपकी प्राण-वायु तथा शारीरिक बल है। वृक्ष तथा जड़ी-बूटियाँ आपके शरीर के रोम हैं, बादल आपके सिर के बाल हैं तथा पर्वत आपकी अस्थियाँ तथा नाखून हैं। दिन तथा रात का गुजरना आपकी पलकों का झपकना है, प्रजापति आपकी जननेन्द्रिय है और वर्षा आपका वीर्य है।

त्वय्यव्ययात्मन्पुरुषे प्रकल्पिता
लोकाः सपाला बहुजीवसङ्कुलाः ।
यथा जले सञ्जिहते जलौकसो-
ऽप्युदुम्बरे वा मशका मनोमये ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

त्वयि—तुम्हारे भीतर; अव्यय-आत्मन्—अविनाशी; पुरुषे—भगवान्; प्रकल्पिताः—उत्पन्न; लोकाः—जगत; स-पालाः—पालनकर्ता देवताओं समेत; बहु—अनेक; जीव—जीवों समेत; सङ्कुलाः—एकत्र; यथा—जिस तरह; जले—जल में; सञ्जिहते—इधर उधर घूमते हैं; जल-ओकसः—जल के प्राणी; अपि—निस्सन्देह; उदुम्बरे—उदुम्बर फल (गूलर) में; वा—अथवा; मशकाः—छोटे छोटे कीट; मनः—मन (तथा अन्य इन्द्रियाँ); मये—से युक्त आपमें।

अपने अपने अधिष्ठातृ देवताओं तथा असंख्य जीवों समेत सारे जगत आप परम अविनाशी से उद्भूत हैं। ये सारे जगत मन तथा इन्द्रियों पर आधारित होकर आपके भीतर घूमते रहते हैं जिस प्रकार समुद्र में जलचर तैरते हैं अथवा छोटे छोटे कीट गूलर फल के भीतर छेदते रहते हैं।

यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि ।
तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

यानि यानि—जो जो; इह—इस जगत में; रूपाणि—रूप; क्रीडन—खेल के; अर्थम्—हेतु; बिभर्षि—प्रकट करते हो; हि—निस्सन्देह; तैः—उनके द्वारा; आमृष्ट—धुला हुआ; शुचः—उनके दुखों का; लोकाः—लोग; मुदा—हर्षपूर्वक; गायन्ति—गाते हैं; ते—तुम्हारा; यशः—यश।

आप अपनी लीलाओं का आनन्द लेने के लिए इस भौतिक जगत में नाना रूपों में अपने को प्रकट करते हैं और ये अवतार उन लोगों के सारे दुखों को धो डालते हैं, जो हर्षपूर्वक आपके यश का गान करते हैं।

नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च ।
हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे ॥ १७ ॥
अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे ।
क्षित्युद्धारविहाराय नमः शूकरमूर्तये ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; कारण—सृष्टि के आदि कारण; मत्स्याय—मत्स्य के रूप में भगवान् के प्राकट्य को; प्रलय—संहार के; अब्धि—सागर में; चराय—इधर उधर विचरण करने वाले; च—तथा; हय-शीर्ष्णे—घोड़े के सिर से युक्त अवतार को; नमः—नमस्कार; तुभ्यम्—तुमको; मधु-कैटभ—मधु तथा कैटभ नामक असुरों के; मृत्यवे—मारने वाले को; अकूपाराय—कच्छप को; बृहते—विशाल; नमः—नमस्कार; मन्दर—मन्दराचल के; धारिणे—धारण करने वाले को; क्षिति—पृथ्वी के; उद्धार—ऊपर उठाने; विहाराय—विहार के लिए; नमः—नमस्कार; शूकर—सुअर के; मूर्तये—रूप को।

मैं सृष्टि के कारण भगवान् मत्स्य रूप आपको नमस्कार करता हूँ जो प्रलय के सागर में इधर

उधर तैरते रहे। मैं मधु तथा कैटभ के संहारक हयग्रीव को, मन्दराचल को धारण करने वाले विशाल कच्छप (भगवान् कूर्म) को तथा पृथ्वी को उठाने में आनन्द का अनुभव करने वाले सूकर अवतार (भगवान् वराह) रूप आपको नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : *विश्वकोश* में *अकूपाराय* शब्द का अर्थ कूर्मराज दिया हुआ है।

नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह ।
वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; ते—तुमको; अद्भुत—आश्चर्यजनक; सिंहाय—सिंह को; सधु-लोक—सारे साधु-भक्तों के; भय—डर के; अपह—हटाने वाले; वामनाय—वामन को; नमः—नमस्कार; तुभ्यम्—तुमको; क्रान्त—पग सेनापा; त्रि-भुवनाय—ब्रह्माण्ड के तीनों लोकों के; च—तथा।

अपने सन्त-भक्तों के भय को भगाने वाले अद्भुत सिंह (भगवान् नृसिंह) तथा तीनों जगतों को अपने पगों से नापने वाले वामन मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

नमो भृगुणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे ।
नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च ॥ २० ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; भृगूणाम्—भृगुवंशियों के; पतये—स्वामी को (परशुराम को); दृप्त—घमंडी; क्षत्र—राज-परिवार वालों के; वन—जंगल; छिदे—काटने वाला; नमः—नमस्कार; ते—तुम्हें; रघु-वर्याय—रघुवंशियों में श्रेष्ठ; रावण—रावण का; अन्त-कराय—अन्त करने वाले; च—तथा।

घमंडी राजाओं रूपी जंगल को काट डालने वाले भृगुपति तथा राक्षस रावण का अन्त करने वाले रघुकुल शिरोमणि भगवान् राम, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च ।
प्रद्युम्नायनिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; ते—तुम्हें; वासुदेवाय—श्री वासुदेव को; नमः—नमस्कार; सङ्कर्षणाय—संकर्षण को; च—तथा; प्रद्युम्नाय—प्रद्युम्न को; अनिरुद्धाय—तथा अनिरुद्ध को; सात्वताम्—यादवों के; पतये—प्रधान को; नमः—नमस्कार।

सात्वतों के स्वामी आपको नमस्कार है। आपके वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध रूपों को नमस्कार है।

नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने ।
म्लेच्छप्रायक्षत्रहन्त्रे नमस्ते कल्किरूपिणे ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; बुद्धाय—बुद्ध को; शुद्धाय—शुद्ध; दैत्य-दानव—दिति तथा दानु की सन्तानों के; मोहिने—मोहने वाले को; म्लेच्छ—मांस-भक्षक अछूत के; प्राय—समान; क्षत्र—राजाओं; हन्त्रे—मारने वाले को; नमः—नमस्कार; ते—तुम्हें; कल्कि-रूपिणे—कल्कि के रूप में।

आपके शुद्ध रूप भगवान् बुद्ध को नमस्कार है, जो दैत्यों तथा दानवों को मोह लेगा। आपके कल्कि रूप को नमस्कार है, जो राजा बनने वाले मांस-भक्षकों का संहार करने वाला है।

भगवन्जीवलोकोऽयं मोहितस्तव मायया ।
अहं ममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

भगवन्—हे भगवन्; जीव—जीवों का; लोकः—लोक; अयम्—यह; मोहितः—मोहग्रस्त; तव—तुम्हारी; मायया—माया द्वारा; अहम् मम इति—मैं तथा मेरी धारणा पर आधारित; असत्—मिथ्या; ग्राहः—जिसकी अनुभूति; भ्राम्यते—घुमाती है; कर्म—सकाम कर्म के; वर्त्मसु—मार्गों पर।

हे परमेश्वर, इस जगत में सारे जीव आपकी शक्ति माया से भ्रमित हैं। वे ''मैं'' तथा ''मेरा'' की मिथ्या धारणाओं में फँसकर सकाम कर्मों के मार्गों पर भटकते रहने के लिए बाध्य होते रहते हैं।

अहं चात्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु ।
भ्रमामि स्वप्नकल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; च—भी; आत्म—शरीर सम्बन्धी; आत्म-ज—सन्तानें; अगार—घर; दार—पत्नी; अर्थ—धन; स्व-जन—अनुयायियों; आदिषु—इत्यादि में; भ्रमामि—भ्रम में पड़ा हूँ; स्वप्न—स्वप्न; कल्पेषु—के सदृश; मूढः—मूर्ख; सत्य—चूँकि वे असली हैं; धिया—भावना से; विभो—हे सर्वशक्तिमान प्रभु।

हे शक्तिशाली विभो, मैं भी अपने शरीर, सन्तानों, घर, पत्नी, धन तथा अनुयायियों को मूर्खता से वास्तविक मानकर इस प्रकार से भ्रमित हो रहा हूँ यद्यपि ये सभी स्वप्न के समान असत्य हैं।

अनित्यानात्मदुःखेषु विपर्ययमतिर्ह्यहम् ।
द्वन्द्वारामस्तमोविष्टो न जाने त्वात्मनः प्रियम् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

अनित्य—नित्य नहीं; अनात्म—आत्मा नहीं; दुःखेषु—कष्ट के साधनों में; विपर्यय—उल्टी; मतिः—मनोवृत्ति; हि—निस्सन्देह; अहम्—मैं; द्वन्द्व—द्वैत में; आरामः—आनन्द लेता हुआ; तमः—अज्ञान में; विष्टः—मग्न; न जाने—पहचान नहीं पा रहा; त्वा—आपको; आत्मनः—अपने; प्रियम्—प्रियतम को।

इस तरह नश्वर को नित्य, अपने शरीर को आत्मा तथा कष्ट के साधनों को सुख के साधन मानते हुए मैंने भौतिक द्वन्द्वों में आनन्द उठाने का प्रयत्न किया है। इस तरह अज्ञान से आवृत होकर मैं यह नहीं पहचान सका कि आप ही मेरे प्रेम के असली लक्ष्य हैं।

यथाबुधो जलं हित्वा प्रतिच्छन्नं तदुद्भवैः ।
अभ्येति मृगतृष्णां वै तद्वत्त्वाहं पराङ्मुखः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; अबुधः—कोई अज्ञानी; जलम्—जल की; हित्वा—उपेक्षा करके; प्रतिच्छन्नम्—प्रच्छन्न; तत्-उद्भवैः—उसमें उगे हुए वृक्षों से; अभ्येति—पास पहुँचता है; मृग-तृष्णाम्—मृगतृष्णा; वै—निस्सन्देह; तद्वत्—उसी तरह; त्वा—तुमसे; अहम्—मैंने; पराक्-मुखः—मुख मोड़ लिया।

जिस तरह कोई मूर्ख व्यक्ति जल के अन्दर उगी हुई वनस्पति से ढके हुए जल की उपेक्षा करके मृगतृष्णा के पीछे दौड़ता है उसी तरह मैंने आपसे मुख मोड़ रखा है।

नोत्सहेऽहं कृपणधीः कामकर्महतं मनः ।
रोद्धुं प्रमाथिभिश्चाक्षैर्ह्रियमाणमितस्ततः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

न उत्सहे—शक्ति नहीं पा रहा; अहम्—मैं; कृपण—कुंठित; धीः—बुद्धि; काम—भौतिक इच्छा; कर्म—तथा भौतिक कार्यों से; हतम्—विचलित; मनः—मेरा मन; रोद्धुम्—रोके रखने के लिए; प्रमाथिभिः—अत्यन्त शक्तिशाली तथा इच्छा करने वाले; च—तथा; अक्षैः—इन्द्रियों से; ह्रियमाणम्—घसीटा जाकर; इतः ततः—इधर उधर।

मेरी बुद्धि इतनी कुंठित है कि मैं अपने मन को रोक पाने की शक्ति नहीं जुटा पा रहा जो भौतिक इच्छाओं तथा कार्यों से विचलित होता रहता है और मेरी जिद्दी इन्द्रियों द्वारा निरन्तर इधर उधर घसीटा जाता है।

सोऽहं तवाङ्घ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं
तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये ।
पुंसो भवेद्यर्हि संसरणापवर्ग-
स्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

सः—ऐसा; अहम्—मैं; तव—तुम्हारे; अङ्घ्रि—चरणों के; उपगतः अस्मि—पास आया हूँ; असताम्—अशुद्धों के लिए; दुरापम्—प्राप्त करना असम्भव; तत्—वह; च—और; अपि—भी; अहम्—मैं; भवत्—आपकी; अनुग्रहः—दया; ईश—हे ईश्वर; मन्ये—सोचता हूँ; पुंसः—मनुष्य का; भवेत्—होए; यर्हि—जब; संसरण—भव-चक्र का; अपवर्गः—अन्त; त्वयि—तुम में; अब्ज—कमल के समान; नाभ—नाभि वाले; सत्—शुद्ध भक्तों की; उपासनया—पूजा से; मतिः—चेतना; स्यात्—उत्पन्न होती है।

हे प्रभु, इस तरह पतित हुआ मैं आपके चरणों में शरण लेने आया हूँ, क्योंकि, यद्यपि अशुद्ध लोग आपके चरणों को कभी भी प्राप्त नहीं कर पाते, मेरा विचार है कि आपकी कृपा से तो यह संभव हो सका है। हे कमल-नाभ भगवान्, जब किसी का भौतिक जीवन समाप्त हो जाता है तभी वह आपके शुद्ध भक्तों की सेवा करके आपके प्रति चेतना उत्पन्न कर सकता है।

नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्ययहेतवे ।
पुरुषेशप्रधानाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; विज्ञान—शुद्ध ज्ञान के; मात्राय—स्वरूप को; सर्व—समस्त; प्रत्यय—ज्ञान के रूपों के; हेतवे—कारण को; पुरुष—पुरुष की; ईश—नियंत्रण करने वाली शक्ति के; प्रधानाय—सर्वेसर्वा को; ब्रह्मणे—परब्रह्म को; अनन्त—असीम; शक्तये—शक्ति।

असीम शक्तियों के स्वामी परम सत्य को नमस्कार है। वे शुद्ध दिव्य-ज्ञान स्वरूप हैं, समस्त चेतनाओं के स्त्रोत हैं और जीव पर शासन चलाने वाली प्रकृति की शक्तियों के अधिपति हैं।

नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च ।
हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार; ते—तुम्हें; वासुदेवाय—वसुदेव के पुत्र को; सर्व—समस्त; भूत—जीवों के; क्षयाय—निवास को; च—तथा; हृषीक-ईश—मन तथा इन्द्रियों के स्वामी; नमः—नमस्कार; तुभ्यम्—तुम्हें; प्रपन्नम्—शरणागत हूँ; पाहि—कृपया बचायें; माम्—मुझको; प्रभो—हे स्वामी।

हे वसुदेवपुत्र आपको नमस्कार है। आपमें सारे जीवों का निवास है। हे मन तथा इन्द्रियों के स्वामी, मैं पुनः आपको नमस्कार करता हूँ। हे प्रभु, मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''अक्रूर द्वारा स्तुति'' नामक चालीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।